विकास व्यवस्था के शिकार आदिवासी: संरक्षात्मक भेदभाव का मसला

डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन

भारतीय संविधान ने देश के कमजोर वर्गों के विकास के लिए एक प्रतिमान निर्धारित किया है। इन कमजोर वर्गों में अनुसूचित जातियां, अनुसूचित जनजातियां और अन्य पिछड़े वर्ग आते हैं। सैकड़ों वर्षों तक ये कमजोर वर्ग तथाकथित उच्च हिंदू जातियों के शोषण और दमन को बर्दाश्त करते आ रहे हैं। संविधान निर्माताओं ने यह प्रावधान रखा है कि अब इन वर्गों के साथ में संरक्षात्मक भेदभाव की नीति को अपनाया जावे। इसका मतलब है दूसरे वर्गों की तुलना में इन वर्गों को विकास के अतिरिक्त अवसर दिये जायें। इस दृष्टि से अनुसूचित जनजातियों और जातियों के कल्याण और विकास के समान अवसर राज्य ने दिये हैं। संविधान के अनुच्छेद 15 (4), 16 (4), 19 (5), 23, 46, 330, 332, 334, 335 और 338 इन दोनों वर्गों के लिए समान रूप से लागू होते हैं। आदिवासियों के लिये जो विशेष अनुच्छेद लागू होते है वे है 29, 164, 244, 244 (A), 275 (1), 339 (1), 339 (2) इन कमजोर वर्गों के लिए जो संरक्षणात्मक प्रावधान दिये गये है उन पर देश में बराबर बहस होती रही है। यह कहा जाता रहा है कि ये प्रावधान आगे चलकर जातियों के बीच की खाई और गहरा कर देंगे। इस तरह का विवाद आज भी चलता है, फिर भी अब लगभग सबने स्वीकार कर लिया है कि पिछड़े हुए वर्गों को विकास के ये अवसर देना देश के एकीकरण के लिए आवश्यक है।

जो संरक्षणात्मक भेदभाव है उसमें पहली सुविधा यह है कि

इन वर्गों को संसद तथा राज्य विधानसभाओं में आरक्षण दिया जाये। दूसरे, संविधानात्मक प्रावधानों के अनुसार सरकारी तथा अर्द्ध सरकारी नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान किया जाये, और तीसरा, इन वर्गों के लिए शिक्षण संस्थाओं और विशेष करके उच्च शिक्षा में वरीयता पर आरक्षण दिया जाये। नियमानुसार सरकार ने विभिन्न स्तरों पर अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिये स्थान का आरक्षण किया है। 1991 की जनगणना के अनुसार देश की कुल जनसंख्या में 16.5 प्रतिशत अनुसूचित जातियां हैं और 8.0 प्रतिशत अनुसूचित जनजातियां हैं।

आरक्षण की यह नीति लगभग पिछले पचास वर्षों से अमल में ली जाने लगी है। इस अवधि में इन कमजोर वर्गों की जनसंख्या में बराबर वृद्धि हुई है। लेकिन इस वृद्धि के अनुपात में आरक्षण के कोटे में कोई फेर-बदल नहीं हुआ है। इधर रुचिकर बात यह है कि आरक्षण के होते हुए भी सरकारी उच्च नौकरियों में अब भी कोटे के अनुसार कमजोर वर्गों की नियुक्ति नहीं हुई है। इस विषय पर हम यहां कोई चर्चा नहीं करना चाहते। हमारा उद्देश्य यहां यह बताना है कि सरकार ने विकास की जिस व्यवस्था को अपनाया है उसमें कुछ इस तरह का खोट है या संरचनात्मक कमी है जिसके कारण अनुसूचित जातियों की तुलना में आदिवासियों को बहुत थोड़ा लाभ मिला है। हम अपने प्रबंध को प्रस्तुत करें इससे पहले यह कहना चाहेंगे कि आरक्षण की नीति दो स्तर पर निर्धारित होती है। एक स्तर तो केंद्र का है। और केंद्र में अनुसूचित जातियों के लिए 15 प्रतिशत स्थान और आदिवासियों के लिए 7.5 प्रतिशत स्थान आरक्षित है। लेकिन संविधान ने राज्यों को अपनी स्थिति के अनुसार आरक्षण करने की छूट दी है। इसका मतलब यह हुआ कि प्रत्येक राज्य ने इन कमजोर वर्गों की जनसंख्या के आधार पर विधानसभा, सरकारी नौकरियों और शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण निश्चित किया है। ऐसी स्थिति में राज्यों में आरक्षण समान नहीं है।

अब प्रश्न उठता है कि आदिवासियों के लिए आरक्षण के स्थान थोड़े क्यों हैं? और दूसरी ओर अनुसूचित जातियों को आरक्षण के अधिक स्थान क्यों दिये गये हैं? इन दोनों प्रश्नों के उत्तर कठिन नहीं हैं। अनुसूचित जातियों की जनसंख्या अधिक है और इसलिए उन्हें आरक्षण के स्थान अधिक हैं; आदिवासी जनसंख्या में थोड़े हैं और इसलिए उनके लिए स्थान भी थोड़े हैं। व्यवस्था यहीं पर आकर आदिवासियों के साथ न्याय नहीं करती। हमारा बुनियादी तर्क यह है कि आदिवासी समाज अनुसूचित जातियों के समाज से भिन्न है। प्राचीन काल से या कहिये, जब से वर्ण व्यवस्था बनी है, अनुसूचित जातियां हिंदू जाति व्यवस्था की अंग रही हैं। ये जातियां उच्च जातियों के साथ एक ही गांव या कस्बे में रही हैं। इन अनुसूचित जातियों ने उच्च जातियों के संपर्क में रहकर बहुत कुछ सीखा है। उनके रीति-रिवाज भी उच्च जातियों के समान रहे हैं। जो कुछ थोड़ी बहुत कमी थी वह संस्कृतिकरण की प्रक्रिया ने पूरी कर दी। अब कम से कम शहरों में तो अस्पृश्यता कम हो गई है। पिछड़ी जातियों की जाति मुख्यधारा में बेहतर स्थिति होने के कारण उन्होंने विकास के लाभ को आदिम जातियों की तुलना में अधिक भुनाया है।

आदिवासी एक पृथक समाज को बनाते हैं। हाल में **भारतीय मानव विज्ञान सर्वेक्षण** ने के.एस. सिंह के नेतृत्व में एक बहुत बड़ा प्रोजेक्ट **पीपल ऑफ इंडिया** (कई जिल्दों में) प्रकाशित किया है। इसमें के.एस. सिंह बताते हैं कि आदिवासी आज भी जातीय सामाजिक व्यवस्था से बाहर हैं। उनमें कोई वर्ण व्यवस्था नहीं है। यद्यपि इन जनजातियों ने इसाई और हिंदू धर्म को अपनाया है फिर भी अपने मूल में वे अब भी आदिवासी धर्म के अनुयायी हैं। उनके रस्म रिवाजों में हिंदू जातियों के पुरोहित नहीं आते। आदिवासी चाहे राम और कृष्ण की पूजा कर लें पर उनकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति तो उनके अपने स्थानीय देवी-देवताओं के माध्यम से ही होती है। आदिवासियों के एक भाग ने आधुनिकता को अपना लिया है। फिर भी आम आदिवासी हिंदू जातियों की मुख्यधारा से पृथक है।

बहुत थोड़े शब्दों में कहा जाये तो कहेंगे कि पिछड़े वर्गों में अनुसूचित जातियों की समस्या उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक निर्योग्यता में निहित है जबकि आदिवासी सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में तो पिछड़े हैं ही, उनकी मुख्यधारा से पृथकता बहुत बड़ी रुकावट है। अतः हमारी संविधानात्मक व्यवस्था ने अनुसूचित जातियों और जनजातियों को समान स्तर पर रखा है यह मौलिक कमी है। हर स्थिति में अनुसूचित जनजातियां पिछड़ी जातियों की तुलना में पीछे

है। यह बहुत रोचक बात है कि आदिवासियों ने कभी भी इस तरह के व्यवहार के लिए अपनी आवाज नहीं उठाई है। संविधान निर्माताओं में अंबेडकर पिछड़े वर्गों के नेता थे। उन्होंने इन जातियों के आरक्षण के लिए तो पर्याप्त सुविधा कर दी लेकिन जनजातियों के सामने ऐसा कोई नेतृत्व नहीं था और विकास के इस बंटवारे में वे हमेशा के लिए पिछड़ गये।

हमारा थीसिस यह है कि संरक्षणात्मक भेदभाव में विकास के कार्यक्रमों का जो लाभ पिछड़े वर्गों को मिला है उनमें आदिवासी पिछड़ गये हैं और अनुसूचित जातियों ने अधिक लाभ उठाया है। लाभ के मुख्यतया तीन क्षेत्र हैं: (1) संसद और विधानसभा में आरक्षण, (2) नौकरियों में आरक्षण, और (3) शिक्षा में आरक्षण।

अब हम सिलसिले से आरक्षण से प्राप्त होने वाले लाभ का उल्लेख करेंगे :

संसद और विधानसभा

हम राजनीति के क्षेत्र में सबसे पहले देखें। संसद और विधानसभा में इन वर्गों के लिए जैसा कि हमने पहले कहा है 15 प्रतिशत और 7.5 प्रतिशत स्थान अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए आरक्षित है। राज्यों की विधान सभा में ये स्थान इन वर्गों की जनसंख्या के आधार पर आरक्षित किये गए। उदाहरण के लिए 1999 में संसद में अनुसूचित जातियों के 79 (14.5 प्रतिशत) और अनुसूचित जनजातियों के 41 (7.5 प्रतिशत) सांसद थे। इन सांसदों ने संसद में अपनी भूमिका का निर्वाह किस भांति किया इसका प्रमाण जुटाना बहुत कठिन है। ये सांसद कमजोर वर्गों के होकर भी आपस में क्षेत्र और भाषा तथा संस्कृति के आधार पर बंटे हुए हैं। इतना होने पर भी अनुसूचित जातियों के कुछ सांसद ऐसे हैं जिनका स्थान ऊंचा उठ जाता है। इनमें बाबा साहब अंबेडकर और जगजीवन राम जिनके सांसद हैं। आर.के. नारायण, बूटा सिंह, रामविलास पासवान, कांशीराम और मायावती या तो सांसद हैं या विधान सभा के सदस्य हैं। ये सदस्य अनुसूचित जातियों के होकर भी प्रजातांत्रिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण समझे जाते हैं। उधर दूसरी ओर इस तरह के कोई महत्वपूर्ण सांसद या विधानसभा के सदस्य नहीं हैं जो अनुसूचित जनजातियों के हों और जिनका संसद या विधानसभा में अग्रणी नाम हो। अपवाद रूप से संगमा का नाम लिया जा सकता है जो आदिवासी हैं लेकिन उनके क्षेत्र में भी उनके अनुयायी बहुत थोड़े हैं। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि राष्ट्रीय स्तर पर अनुसूचित जनजातियों की भागीदारी अनुसूचित जातियों की तुलना में बहुत पीछे है। यह कहा जा सकता है कि क्षेत्रीय स्तर पर कुछ ऐसे आदिवासी सदस्य हैं जो अनुसूचित जातियों के साथ सत्ता में भागीदारी करते हैं।

सरकारी सेवाएं

सरकारी सेवाओं के कई स्तर हैं। सामान्यतया इन्हें चार स्तरों में बांटते हैं: अ, ब, स और द। इन सेवाओं को हम अनुसूचित जातियों और जनजातियों की प्रतिशत भागीदारी के अनुसार निम्न तालिका में रखते हैं:

तालिका 1

अनुसूचित जातियों और जनजातियों की सरकारी नौकरियों के विभिन्न स्तरों में भागीदारी

स्तर	कुल कर्मचारी	अनुसूचित जातियों के	प्रतिशत कर्मचारी	आदिवासियों	प्रतिशत
अ	68,408	6,637	10.15	1,801	2.63
ब	1,08,857	13,797	12.67	2,912	2.68
स	23,41,863	3,78,179	16.15	1,33,179	5.69
द	10,41,083	2,21,380	21.26	67,455	6.48
कुल	65,57,210	6,19,966	17.43	2,06,456	5.78

स्रोत: रिपोर्ट: नेशनल कमीशन फार शिड्यूल्ड कास्ट एंड शिड्यूल्ड ट्राइब, वॉल्यूम, 1, 1996-97 और 1997-98

ऊपर की तालिका से बहुत स्पष्ट है कि नौकरियों में अनुसूचित जनजातियों को अनुसूचित जातियों की तुलना में बहुत कम स्थान मिले हैं। जहां 17.43 प्रतिशत अनुसूचित जातियां सरकारी नौकरियों में हैं वहां अनुसूचित जातियों का प्रतिशत 5.78 है। सरकारी नौकरियों के इस स्तर को यदि हम विशेषता के आधार पर देखें तो बड़े चौंकाने वाले तथ्य मिलते हैं। उदाहरण के लिये दिल्ली विश्वविद्यालय में 1995 में 700 अध्यापकों में केवल 7 अध्यापक कमजोर वर्गों के थे। यदि हम सार्वजनिक क्षेत्र में देखें तो और अधिक निराशा मिलती है। आंकड़ों के जाल को किसी भी दृष्टिकोण से देखें बहुत स्पष्ट है कि विकास के लाभ का बहुत थोड़ा हिस्सा कमजोर वर्गों को मिला है और कमजोर वर्गों में भी सबसे नीचे अनुसूचित

जनजातियों के लोग हैं।

शिक्षा

आरक्षण के किसी भी लाभ को लें इसकी बहुत बड़ी पूर्व आवश्यकता शिक्षा है। सरकारी कार्यालयों में, चिकित्सा में और शिक्षा में काम करने के लिए उच्च शिक्षा का होना आवश्यक है। इस हिसाब से हम जब आंकड़ों को देखते हैं तो निराशा ही हाथ लगती है। उदाहरण के लिए देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों और कालेजों में प्रोफेसर के स्थान पर काम करने वाले अनुसूचित जातियों का प्रतिशत 0.96 है और अनुसूचित जनजातियों का प्रतिशत 0.33 है। रीडर के स्थान पर काम करने वाले अनुसूचित जाति के सदस्यों का प्रतिशत 1.78 है और आदिवासियों का 0.53 है। व्याख्याता के स्तर पर यह संख्या थोड़ी बढ़ जाती है। अनुसूचित जातियों के सदस्य व्याख्याता के पद पर 3.22 प्रतिशत है और आदिवासी 0.79 है। ये सब आंकड़े बहुत स्पष्ट रूप से बताते हैं कि सेवा के क्षेत्र में अनुसूचित जनजातियां बराबर अनुसूचित जातियों के पीछे रही है।

इस लेख में हमने इस तथ्य को रखा है कि संविधान लागू करने के बाद संरक्षणात्मक भेदभाव की जिस नीति और कार्यक्रम को हमने लागू किया है इसमें कमजोर वर्गों में अधिक लाभ अनुसूचित जातियों को मिला है। इसका परिणाम यह हुआ है कि पिछड़े वर्गों में जहां विजातीयता बहुत थोड़ी थी, विकास के परिणामस्वरूप बढ़ गई है। इसने हमारे एकीकरण के प्रयास को भी हानि पहुंचाई है। अब विकास ने जनजातियों को अनुसूचित जातियों से अलग-थलग कर दिया है। विकास की जिस नीति को इस देश ने अपनाया है वह व्यवस्था का दोष मात्र है। पहला दोष तो यह है कि हमने बुनियादी रूप से असमान समूहों को एक समूह यानी पिछड़े वर्गों में डाल दिया है। अनुसूचित जनजातियों की समस्या पृथक्करण की है और अनुसूचित जातियों की समस्या अस्पृश्यता की है और मजेदार बात यह है कि दोनों को एक साथ एक ही श्रेणी में डाल दिया है। विकास की दौड़ में आदिवासी पिछड़ गये हैं इसका कारण हमारी विकास व्यवस्था है। इसमें सुधार संविधान संशोधन द्वारा ही किया जा सकता है।
